International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 82-83

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 82-83
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 28-11-2014
Accepted: 30-12-2014

रमा कुमारी
शोधार्थी, साहित्य विभाग, कामेश्वरसिंह, दरभंगा, संस्कृत, विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
रमा कुमारी
शोधार्थी, साहित्य विभाग, कामेश्वरसिंह, दरभंगा, संस्कृत, विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

संकृतसाहित्ये पं० सुरेन्द्र झा सुमनमहाभागानां कवित्वक्षेत्रे प्रवेशस्य परिस्थितिः

रमा कुमारी

प्रस्तावनाः

1928 ईस्वीये धर्मसमाज संस्कृत महाविद्यालय मुजफ्फरपुरम् सः आगतः। तत्र कविशेखर पं. बदरीनाथ झा महोदयात् साहित्यशास्त्रं पठितवान्। तदानीमेव संस्कृत–कवितायाः लेखानारम्भः कृतः। साहित्य–शास्त्रीपरीक्षायाः सिद्धताक्रमे सुमनः 1929 ईस्वीये कोलकातानगरं गत्वा बंगालस्य प्रसिद्ध काव्य–तीर्थ परीक्षां दतवान्। तस्मिन् परीक्षायामपि तेन प्रथमस्थानं प्राप्तवान्। 1930 ईस्वीये साहित्यशास्त्री अपि च 1932 इस्वीये साहित्याचार्य परीक्षां दत्वा प्रथमस्थानं लब्धवान्।

सुमनजी महोदयः यदा आचार्यकक्षायामासीत् तदानीमेव काव्यशास्त्रीयग्रन्थस्य काव्यदीपिकायामि संस्कृते 'स्नेहवर्षिणी' नामिका टीका लिखितवान्। एवञ्च सुमनजी छात्रजीवने शास्त्रमर्मज्ञः, कविः, व्याख्याकाररूपेण च पूर्णख्यातिः प्राप्तवान्। तदनु विद्यालयीय शिक्षां विरम्य गृहस्थाश्रमं प्रविश्य स्वाध्याये सारस्वत साधने च निरतोऽभूत्।

पंडित सुरेन्द्र झा सुमनः कवित्व क्षेत्रे प्रवेशान्तरं विविध विषये काव्यं रचित वान। यथा तट – प्रशस्ति नामके पद्यकाव्ये प्रकृतेः वर्णनं विद्यते–

प्रकृति विना पुरुष न कृती
आकृति विनु नहि नाम।
कला हीन की काव्य कृति;
रस विनु ललित–ललाम।।
विनु सुरभि क चन्दन जेना,
विनु किरणेँ जनु इन्दु।
ललना विनु जीवन, जेना
लहरि–बिन्दु विनु सिन्धु।।
आकृति प्रकृति क मेल सँ
विकृति न कृति कहबैछ।
रूप–रस क शुचि शैल सँ
संस्कृति लहरि बहैछ।। [1]

एवमेव च 'तत्कुरुष्व मदर्पणम्' इति शीर्षकेन रचिते पद्ये रसस्य वर्णनं कृतं विद्यते–

बिन्दु–बिन्दु सर–सरि लहरि सिन्धु समाहित नित्य।
रंग–रूप रुचि–रोचना कला–प्रसाधन कृत्य।।
बिन्दु–विसर्ग क योजना जत कवि–कल्पित भाव।
राधा – माधव मूल रस–हिक थिक विदित विभाव।। [2]

गङ्गातरङ्गिणी नामके ग्रन्थे–

अँह हिम–नगपति महाकविक उर–द्रवित निरन्तर
नित नव–नव हिम–भाव–सजल कविता चिर सुन्दर
ध्वनि–रस–गति–मय एक–एक पद–कणसँ सुरसरि !
युगयुगसँ छी दैत अमृत सन्देश विश्वभरि
आदि कविक नहि छन्द, कालिदासक ध्वनि बन्ध न,
द्रविड़ शिशुक नहि कण्ठ, जगन्नाथक न निबन्धन,

विद्यापतिक न स्वर, न लभ्य पद्माकर सौरभ,
जननि! सुनाओत कोना मुग्ध सुत विनय हतप्रभ।
किन्तु विदित विश्वास ई जननी ह्रदयाऽऽवर्जना
जड़सुत क्रन्दन सुनि यथा तथा न चतुरक कल्पना।
यदि न हमर हो भाग्य जीव जे जल संचारी
अथवा तट–तरु पत्र खसकय टुटि अन्तहु वारी
यदि नहि संभव होय तृणक तनु सलिल विलासी
अथवा स्नातक केश लुलित भय स्रोतक वासी,
ओहि पथक हम रेणु कण बनी जाहि पथ पथिक जन
जाथि, तनिक पद लागि कहुँ जाय मिली तट वालुकण।

कण्टक मय तटवास हेतु प्रासादहु तेजब,
छोड़ि अरगजा लेपन गङ्गा पाँक अङ्जेब,
नहि व्यवसायी पोत सागरक वक्ष विहारी,
काठ बनव अछि इष्ट जाह्नवी जलसंचारी,
नहि कुंकुम कश्मीरजा युवति कपोल पराग रुचि,
अंग वंग मगधक पशुक खुर–रज बनि लहि स्रोतशुचि।
नहि कस्तूरी तिलक भाल गंगौट लभ्य जत,
स्वर्णक कण अछि तुच्छ, बालु–कण हो यदि उपगत,
अमृत कलश ओंघड़ाय देब गङ्गाम्बु चुलुक भरि,
पघक अघ्ग यदि सघ्ग न चन्दन लेपब उपकरि,
गघ्गा स्रोतक छाड़निक यदि हो सम्प्रति बिन्दु भरि।
चित न चढ़त कथमपि हमर क्षीरक संभृत सिन्धुधरि।
अभिनव बिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णोः
मदन–मथन–मौलेर्मालती–पुष्प–माला।
आदावादिपितामहस्य निगम–व्यापार–पात्रे जलम्
पश्चात् पन्नग शायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्।
समुत्पत्तिः पद्मारमण–पद्मामलनखात्।
गिरिजा वामहि अंग, अहाँ शशिकलहु उपर चढ़ि,
की न बनलि छी प्रिया जगत्पति–पतिक अधिक बढ़ि,
अहींक नीर–बल नारायण पद नीरज पावन,
करथि अहिंक संचय हित विधिहु कमण्डलु धरण,

लोचन असम, अंग भसम चिता को लाइ
तीनों लोक नायक सौ कैसे कै ठहरतो
कहें पद्माकर विलोकि इनि ढंग जाके
वेदहु पुरान गान कैसे अनुसरतो
बाँधे जटाजूट बैठि परबत कूट माहि
महाकाल कूट कहाँ कैसे कै ठहरतो
पीबे नित भंगे, रहे प्रेतन के संगे, ऐसे
पूछतो को नंगै जो न गंगै शीश धरतौ?
सूखि जाती सिन्धु बडवानल की जारनसौं
जो न गंगाधार दै हजार धार मिलतौ।
शिव की सकितथि विष पचाय यदि लितथि न माथे
जैतथि सिन्धु सुखाय वाड़वानलहिक हाथे।
की न ठिठुरि हिमवान मरण–शय्यागत रहितथि
यदि न अमरधुनि! अहँक अमृतरस भाग्यें पबितथि।
शतशत ज्वालामुखी–मुख जरि जैतथि भू दग्धभय
जँ न जुडबितनि सुधामयि ! अहँक सुधाधिक विमलपय।

स्खलन्ती स्वर्लोकादवनितल–शोकापहृतये
जटाजूट ग्रन्थौ यदसि विनिबद्धा पुरभिदा।
अयेनिर्लोभानामपि मनसि लोभं जनयतां
गुणानामेवायं तव जननि ! दोषः परिणतः।।
स्वर्ग अर्गला तोड़ि गिरिक रोधन नहि मानल,
शिवशिर–वासक लोभ लेश मनमे नहि आनल,
शत–शत प्रान्तर पार, सहस कोसक कय धावन,
अन्त क्लान्त मिलि क्षार–वारि, कयलहुँ भव पावन,
शतमुखविनिपातक कथा कहौ, न खेदक लेश अछि,
जगतजीव हित साधना एकमात्र उद्देश्य अछि।

परम पुरातन भागीरथक श्रमसँ संचालित,
विश्व अविद्या हरण हेतु हरिपद उद्घाटित,
जत निर्बाध प्रवेश, जलक कण–कण अध्यापक,
नर–नारी, शिशु–युवा–जीर्ण पलभरिमे स्नातक,
युग–युगसँ जत आर्यजन तत्त्व–चयन कयलनि परम,
करथु अविद्या दूरसे विश्वक विद्यालय चरम।
द्विज–अन्त्यजकें एक घाट जल अहाँ पियौलहुँ,
दलित दलहुँकें 'पानिपरसि' हरिपद पहुँचौलहुँ,
स्वर्ग मन्दिरक रुद्धअर्गला खोलि सहज मति,
अघी–अन्त्यजक सुलभ कयल जननी दर्शन गति,
अहँ सुधारिका धरणिमे प्रथम–प्रथम अयलहुँ जखन
यम–समाजमे गेल मचि रिक्त–रक्त हलचल तखन।
गिरिक शिखरसँ सागरधरि एकहि प्रवाहसँ,
मुक्ति–साम्य सन्देश देल स्वच्छन्द भावसँ,
स्वर्ग राज्यमे भेद न राखल, नृपति रघ्क मे,
भक्तिक रममे, ज्ञानक पूजीपतिक अघ्कमे,
मुक्ति–तन्त्र जन सुगमकय, दण्डधरक बललय निखिल,
क्रान्तिकारिणी कयल अहँ भव–वन्दी बन्धन शिथिल

जनक जनिक अन्वर्थ सदर्थक जन्मभूमि ई
जानकीक जन्मे जनमे अभिधाक जीत ई
सीता खेतक स्वयं लक्षणालक्षित रहितहुँ
मैथिलि ! मिथलावाणीमे रुचि व्यञ्जित करितहुँ
रहितहुँ विश्व–विभूति अहँ तिरहुतिमाटिक मूर्ति छी।
रसरसना सम मैथिली मिथिला–मानक पूर्ति छी।

जकर प्रथम वाणी श्रुति रूपें भुवन–पाविनी
तत्त्व–चिन्तना आरण्यक उपनिषद–वादिनी
वक्र वचनसँ प्रखर तर्क शास्त्रक निर्झरिणी
कण्ठ–स्वरसँ सङ्गीतक रसमय तरङ्गिणी
श्वास–श्वाससँ शास्त्र पुनि पुलक–पुलक कविताकलित
भुक्ति–मुक्ति करगत ससत तीर भुक्ति जपपदललित।
अहिंक सस्मित दन्त्य कान्तिक बिन्दु इन्दु–द्युति ललित।
अहिंक कण्ठक छन्द ध्वनि संगीत स्वर लहरी कलित।
मञ्जु नूपुर–शिञ्जिते ! अनुनासिककः अनुरञ्जना।
चरण–तलहिक ताल–व्याख्यामे गृदङ्गक कल्पना।।
नित्य ऋतु–शृङ्गार सजनहुँ प्रकृति रहथि पराजिता
ह्रदय–मन्दिर मूर्ति पूजित सुन्दरी अपराजिता। [3]
पंडित सुरेन्द्र झा सुमनमहोदयस्य देशः कालनिर्णयश्च आदौ विचार्य तदनु कवित्वक्षेत्रे प्रवेशस्य परिस्थितिः तस्य स्वरूपञ्च वर्णितोऽस्ति।

संदर्भः

1. बिन्दु विसर्ग, पृ.– 39।
2. तत्रैव।
3. सुरेन्द्र झा सुमन, पृ.– 27–38।